17

जीव तू भ्रमत सदैव अकेला...

जीव तू भ्रमत सदैव अकेला, संग साथी नहीं कोई तेरा।
भ्रमत सदैव अकेला। जीव तू भ्रमत सदैव अकेला।।

अपना सुख दुःख आपहि भुगतै, होत कुटुम्ब न भेला।
स्वार्थ भये, सब बिछुर जात हैं, विघट जात ज्यों मेला।।

भ्रमत सदैव अकेला। जीव तू भ्रमत सदैव अकेला।
रक्षक कोई न पूरन ह्वै, जब आयु अन्त की बेला।

फूटत पार रुकत नहिं जैसे, दुद्धर जल को ठेला।।
भ्रमत सदैव अकेला। जीव तू भ्रमत सदैव अकेला।

तन धन जोबन विनशि जात ज्यों, इन्द्रजाल को खेला।
'भागचन्द' इमि लखकर भाई, हो सतगुरु को चेला।।

भ्रमत सदैव अकेला। जीव तू भ्रमत सदैव अकेला।

हे जीव! वास्तव में अनेक प्रकार के संयोग में भी तू सदा अकेला ही भ्रमण करने वाला है, तेरा साथी कोई नहीं है। तू एकत्व को लिये हुये अकेला ही है ।

हे जीव! प्रत्येक प्राणी को अपना सुख-दुःख स्वयं अकेले ही भोगना पड़ता है इस कार्य में कोई कुटुम्बीजन साथ नहीं दे देते क्योकिं ये सब तो स्वार्थ के सगे है। जैसे मेला समाप्त होने पर सभी यात्री अलग-अलग स्थान पर चले जाते हैं। उसी प्रकार स्वार्थ सिद्ध हो जाने के बाद सभी कुटुम्बीजन भी साथ छोड़के चले जाते हैं ।

हे प्राणी! जिस प्रकार बांध के फूट जाने पर जल के तेज प्रवाह को कोई नहीं रोक सकता उसी प्रकार जब आयु की समाप्ति का समय आता है तब कोई भी तेरी रक्षा नहीं कर सकता और न कोई तेरी आयु बढ़ाने में समर्थ हो सकता है ।

जिस प्रकार इन्दजाल नष्ट हो जाता है उसी प्रकार शरीर, धन, यौवन आदि सब नाश को प्राप्त होते हैं इसलिये कविवर भागचन्दजी कहते हैं कि - हे भाई! यह देखकर तू सच्चे गुरू अर्थात् दिगम्बर मुनिराज का शिष्यत्व स्वीकार कर और उनके वचनों को जीवन में धारण कर तभी तेरा कल्याण होगा ।